RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 13 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 21 जून, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 13, 18-21 जून 2020 तदनुसार 8 आषाढ़, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

सब देव अग्नि की सेवा करते हैं

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्माऽआदिद्धोतारं न्यसादयन्त।।

-यजु:० ३३।७

शब्दार्थ-त्रीणि= तीन **शता**= सौ **त्री**= तीन **सहस्राणि**= हज़ार **च**= और **त्रिंशत्**= तीस **च**= और **नव**= नौ **देवा:**= देव **अग्निम्**= अग्नि की **असपर्यन्**= परिचर्य्या करते हैं। वे **घृतै:**= घृतों से **औक्षन्**= सींचते हैं, **अस्मै**= इसके लिए **बर्हि:**= आसन **अस्तृणन्**= बिछाते हैं, **आत्**= इसके बाद **इत्**= ही **होतारम्**= होता को **नि: असादयन्त**= बिठाते हैं।

व्याख्या-जैसे माता अनेक प्रकार से अपनी सन्तान को रिझाती और अपनी बात मनवाती है, [क्योंकि वह इसी में अपने बालक का कल्याण मानती है], ठीक इसी भाँति जगदम्बा अपने जीव-वत्स को नाना प्रकार से समझाती और सत्पथ पर, कल्याणमार्ग पर लाती है। इस मन्त्र में देवसेना किस प्रकार जीव का मङ्गल साधती है, इस बात का वर्णन है। संसार में प्रकृति की कितनी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं, इसे कौन गिन सकता है? इन सबका उद्देश्य **'अग्निं असपर्यन्'**= अग्नि की सेवा करना है। अग्निहोत्र हो रहा है। आग जलाई जा चुकी है। घी उसमें डाला जा रहा है। आसन बिछाया गया है और होता को उस पर लाके बिठाया गया है।

राजा जनक की सभा में पण्डित का शास्त्रार्थ छिड़ गया है। एक ओर याज्ञवल्क्य है और दूसरी ओर राजसभा के सब ज्ञानी। उनमें विदग्ध शाकल नामक विद्वान् ने याज्ञवल्क्य से पूछा, देव कितने हैं? उसने उत्तर दिया-**'यावन्तो वैश्वदेवस्य निविद्यच्यन्ते-त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रा' [बृ० ३।९।१]** = वैश्वदेव की निवित् में जितने कहे गये हैं-अर्थात् तीन, तीन सौ... तीन हज़ार। यजुर्वेद के तेंतीसवें अध्याय के आरम्भ के मन्त्र याज्ञिकों के मत से 'विश्वदेव' देवों की निर्वित् हैं। दो-चार और प्रश्न करके विदग्ध महाराज फिर पूछते हैं- **'कतमे ते त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रा' इति**='वे तीन, तीन सौ... तीन हज़ार देव कौन-से हैं?' याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं- **'महिमान एवैतेषामेते, त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवा:'**-ये 'तीन हज़ार...' आदि तो इनकी बड़ाई है, देव तो तैंतीस ही हैं। तैंतीस कहो या तीन हज़ार कहो, ये सब **'अग्निं असपर्यन्' अग्नि**= जीव की पूजा करते हैं।

पूजा का एक प्रकार बताते हैं-(१) **'औक्षन् घृतै:'**= घृतों से खींचते हैं। अग्नि घृत से प्रदीप्त होती है तो अग्नि का अग्नित्व बना रहता है। ये देव जीव को भोगसामग्री देते हैं, जिससे इसका भोक्तृत्व अक्षुण्ण बना रहता है। (२) **'अस्तृणन् बर्हिरस्मै'**= इसके लिए आसन बिछाते हैं। आग के लिए आसन नहीं बिछाया जाता। होता-अध्वर्यु आदि ऋत्विजों के लिए आसन बिछाया जाता है। इसी एक वाक्य ने 'अग्नि' को भौतिक न रहने देकर चेतन बना दिया है। आसन बैठने के लिए होता है। जीव भी शरीर में आकर बैठा है, अर्थात् जीव के बैठने का स्थान=भोगाधिष्ठान को ये देव ही बनाते हैं और (३) **'आदिद्धोतारं न्यसादयन्त'**= इसके बाद होता=भोक्त को इसमें बिठाते हैं। सार यह है कि सृष्टि के सारे पदार्थ आत्मा के लिए हैं, न कि आत्मा इनके लिए है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

नम: सखिभ्य: पूर्वसद्भ्यो नम: साकं निषेभ्य:।
युज्जे वाचं शतपदीम्।।

-उ० ९.२.७

भावार्थ-सभा समाज वा यज्ञ आदि स्थलों में जब पुरुष जावे, तब हाथ जोड़ कर सब को नमस्कार करे। यदि बोलने का अवसर मिले, तब भी हाथ जोड़, सब मित्रों को नमस्कार करे, पीछे व्याख्यान आदि देवे। कभी भी विद्या वा धन वा जाति वा कुलीनता आदिकों का अभिमान न करे। इस वेद के पवित्र, मधुर और सुखदायक उपदेश को मानने वाला निरभिमान उत्तम पुरुष ही सदा सुखी हो सकता है।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपति: स्याम्।।

-उ० ९.१.९

भावार्थ-हे वेदविद्याऽधिपते अन्तर्यामिन्! आप हम पर कृपा करें कि, हम जितेन्द्रिय होकर आपकी वेदरूपी वाणी के ज्ञाता हों और वेदों का पाठ वा उनके अर्थ जानने की इच्छा वाले अधिकारियों को सिखलाएँ। आपकी कृपा से यदि हम पृथिवी वा धन के मालिक बन जायें तो अनाथों का रक्षण करें और विद्वान् महात्मा पुरुष सुपात्रों को दान देवें।

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे।।

-उ० ९.२.९

भावार्थ-हे परमेश्वर! आपकी वेद रूपी वाणी को जो पुरुष श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से पढ़ते-पढ़ाते और वेदोक्त महायज्ञादि उत्तम कर्मों को करते-कराते हैं। उनको ब्रह्मविद्या और गौ-घोड़ा आदि उपकारक पशु तथा धन प्राप्त होता है। वे धर्मात्मा पुरुष ही परमात्मा की उपासना में सदा सुखी रहते हैं।

वैदिक चिकित्सा विज्ञान

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, दादाबाडी, कोटा (राज.)

स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। सब सत्य विद्याओं में चिकित्सा विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है इसलिए ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इस विषय पर एक हजार से भी अधिक मन्त्रों द्वारा चिन्तन किया गया है। चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन शरीर रचना और उसकी कार्य प्रणाली रोग और उसके कारण, प्रसूति विज्ञान, औषध विज्ञान, शल्य चिकित्सा, विष चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा और रोगाणुनाशक आदि विषयों को अपने अन्दर समेटे हुए है। इस लेख में हम वेद के आधार पर ही इन सभी विषयों पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे है।

1. शरीर रचना और उसकी कार्यप्रणाली-पहले शरीर की रचना देखिए-

केन पार्ष्णी आभृते पुरूषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ।

केनाङ्गुलीः पेशनी केन खानि केनोच्छलङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम्।।

कस्मान्नु गुल्फावधराव कृष्णवन्नष्ठीवन्त्वुतरो पुरूषस्य।

जङ्घे निर्त्यन्यदघुक्व स्विज्जानुनोरू संघी क उ तच्चिकेत।।2।।

अर्थ-मनुष्य की दोनों एडियां किसके द्वारा पुष्ट की गई। किसके द्वारा मांस जोड़ा गया, किसके द्वारा दोनों टकने, सुन्दर अवयवों वाली अंगुलियां, दोनों पांव के तलवे जोड़े गये। किसने ज़मीन पर रखने के लिए पैर बनाए। किस पदार्थ में मनुष्य के नीचे के दोनों टकने, ऊपर के दोनों घुटने उस ईश्वरीय गुणों ने बनाए है। दोनों टांगों को अलग अलग करके किसके भीतर दोनों घुटनों के दोनों जोड़ों को उन्होंने जमाया। इसे किसने जाना है।

शिरो हस्तावथो मुखं जिव्हा ग्रीवश्च कीकसा।

त्वचा प्रावृत्य सर्वतत्संधा समदधान्मही।।3।।

अर्थ-दोनों हाथों, शिर, मुख, जीभ, गले की नाड़िया, पसली की हड्डियां इन सबको त्वचा से ढक कर परमेश्वर ने मिला दिया।

कः सप्तखानि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्।

येषां पुरूत्रा विजयस्य मह्मानि चतुष्पादो द्विपादो यन्ति यामम्।।4।।

परमेश्वर ने मनुष्य के मस्तिष्क में सात गोलक खोदे, यह दोनों कान, दोनों आंखें, दोनों नथूने और एक मुख।

को अस्य बाहू सममरद्वीर्य कवादिति।

अंसो को अस्यतद्देवः कुसिन्धे अध्यादधौ।।5।।

कर्ता परमेश्वर ने इस मनुष्य के दोनों भुजाओं को यथावत् पुष्ट किया है कि वह वीर कर्म करता रहे। इसलिए परमात्मा ने इस मनुष्य के दोनों कन्धों को धड़ में ऐश्वर्य से यथावत् धारण कर दिया है।

ऐतो मूत्रं विजहाति योनिवं प्रविश दिन्द्रियम्। गर्भोजरायुणाऽऽवृत उल्वं जहाति जन्मना।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं मधु।।6।।

इस मंत्र में बताया है लिंग इन्द्रिय में दो नलियां है एक नली से मूत्र और दूसरी नली से वीर्य निकलता है। फिर गर्भाधान का वर्णन है। इसी प्रकार पूरे शरीर की रचना बताई गई है। अब थोड़ा इसकी कार्य प्रणाली पर विचार करते है।

वि यद हेरध त्विषो विश्व देवासो अक्रमुः।

विदन्मृगस्य ताँ अमः।।7।।

मस्तिष्क सभी अंगों को इतना बल देता है कि कुटिल भावनाएं अथवा दुर्बलता रोग आदि उसको पीड़ित नहीं करते।

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च।

परूष्णोषु रूशत पदः।।8।।

भावार्थ-शारीरिक क्रियाएं वातनाड़ियों द्वारा उत्पन्न होती है। इनके भीतर एक तरल पदार्थ और ऊपर सूत्रतन्तु होता है। प्रत्येक तन्तु के दो सिरे होते हैं-एक सिरा मस्तिष्क में और दूसरा सिरा भिन्न-भिन्न अंगों में होता है। एक के द्वारा इन्द्रियों की अनुभूति मस्तिष्क तक पहुंचती है और दूसरे के द्वारा मस्तिष्क की प्रेरणाएं अंगों तक पहुंचती है। उष्ण तरल पदार्थ इनके जीवित होने का लक्षण है।

इसलिए मनुष्य को अपने मस्तिष्क को जागरूक बनाना चाहिए।

अयाधिया च गव्यया पुरूषणामन्पुरूष्टुत।

यत्सोमें आभवः।।9।।

हे अनेक नामों से प्रसिद्ध। बहुतों से स्तुत मेरी मनन शक्ति। इस रीति से तथा ज्ञान चाहने वाली कर्तव्य बुद्धि के साथ प्रत्येक ऐश्वर्य के इच्छुक जन में अपने अस्तित्व को प्रकट कर।

इस विषय को यहीं विराम देकर आगे बढ़ते हैं।

2. रोग उत्पन्न होने के कारण-रोग उत्पन्न होने का कारण अनियमित जीवन दूषित खाद्य पदार्थ का उपयोग तथा रोगाणुओं का किसी तरह से शरीर में प्रवेश कर जाना ही है।

इमे मा पीता यशस उरूष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु।

ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः।।10।।

ये सोमरस पीए जाने पर हमारे यशस्कर और रक्षक होवे। मेरे शरीर के प्रत्येक पर्व में प्रविष्ट होवे। मुझको प्रत्येक वीर कार्य में सनद्ध करे। ऐसे ही जैसे रथ को बलीवर्द सब कामों में तैयार रखते हैं। ये सोम अन्न का दानों से चबाए जाने पर बना रस मुझे चरित्र हीनता से बचावे और आह्लाद कर ये सोम व्याधियों से मुझको पृथक करे।

भूख लगने पर ही अन्न को खाए और अधिक न खाए।

अप त्या अस्थुरनिआरअमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः।

आ सोमो अस्मां-अरूहद्विहाया अगन्मयत्र प्रतिरन्त आयुः।।11।।

ये अनिवार्य सब रोग हमारे शरीर से दूर हो जाये। यद्यपि वे बलवान है परन्तु अब उनकी शक्ति कम हो गई है। वे अत्यन्त दुर्बल हो गए है। इसका कारण है कि हमें उत्तमोत्तम रस और अन्न प्राप्त हो रहे हैं जो सब रोगों के नाशक है।

हम लोग वहां आकर निवास करे जहां आयु बढ़ती है रोगाणु हमारे शरीर में नाना प्रकार से प्रवेश कर अस्वस्थ कर देते हैं रोगाणु हमारे बिस्तर और तकिए में भी स्थान बना लेते हैं।

अल्गण्डून हन्मि महता वधेन दूनाअदूनाअरसा अभूवन।।12।।

अर्थ-तकियों में भरे हुए जन्तुओं को मैं मारता हूं। पक्के और कच्चे कीटाणु निर्बल हो गए है।

कुछ रोग मच्छरों से फैलते हैं जो बहुत घास वाले और अधिक वृष्टि वाले भागों में अधिक होते हैं-

अको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।

यावन्ज्जातस्तक्भं स्तावा-नासि बल्हिकेषु न्योचरः।।13।।

इसका (मच्छर का) कर मूंज आदि घास वाले पर्वत है और इसका घर महावृष्टि वाले देश है। हे दुःख देने वाले ज्वर। जब से तू उत्पन्न हुआ है तब से तू हिंसा वाले देशों में नित्य संगति वाला है।

3. औषध विज्ञान-वेद की शिक्षा है कि हे सैकड़ों प्रकार की बुद्धि से मुक्त मनुष्यों। तुम लोग उन औषधियों जिनमें सैकड़ों हजारों नाड़ियों के अंकुर है अपनी नस नाड़ियों को स्वस्थ रखो और फिर अपने शरीर को भी रोगरहित रखो। शरीर में जो अनेक कर्मस्थल हैं उनका ध्यान रखो। स्त्रियां भी ऐसा ही करे। 14 औषधियों के प्रयोग से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। वेद कहता है-हे औषधि के तुल्य ओषधियों से जानने वाले पुरूष। जिन से तेरी औषधि का सेवन करने वाला मैं जिस प्रयोजन के लिए और जिस पुरूष के लिए खोदूं उससे तू अधिक आयु वाला हो और बड़ी अवस्था वाला होकर तू जो बहुत अंकुरों से युक्त जो औषधि है उसको सेवन करके सुखी हो और प्रसिद्ध हो।15

वास्तव में मनुष्यों को जानना चाहिए कि जितने रोग है उतनी ही उनकी नाशक औषधियां भी है। कहा गया है-हे वैद्य लोगों। जो प्रवृत हुए कफ की गुदेन्द्रिय की व्याधि अथवा अन्य बूढ़े हुए रोगों की नाशक औषधि है और जो असंख्य राज्य रोगों, मुख रोगों और मर्मों का छेदन करने वाले शूल की निवारण करने वाली औषधि है उसे तुम लोग जानो।16

वेद में कुछ औषधियों के नाम और उपयोग के विषय में भी वर्णन है। जैसे पिप्पली विक्षिप्त (पागल पन) की ओषधि और बड़े घाव की ओषधि है। विद्वानों ने माना है कि यह जिलाने के लिए समर्थ है।17

हे नितत्नी। पुराने केशों को दृढ़ कर, बिना उत्पन्न किए हुओं को उत्पन्न कर और उत्पन्न हुओं को बहुत लम्बा बना।।18

इसी प्रकार पाठा ओषधि के विषय में कहा गया है कि इस पाठा ओषध के सेवन से मैं स्त्री उत्कृष्टत से उत्कृष्टतर हो जाऊँ और जो मेरी सौत है वह निकृष्टों से भी निकृष्ट हो जावे।।19

जडगिड ओषधि के लिए कहा गया है कि जो तीन बार पचास अर्थात् एक सौ पचास ललचाने वाली पीड़ाएं और जो सौ दुःख देने वाले रोग है। जडगिड उन सब रोगों को उनके प्रभाव से अलग करे और निष्प्रभाव कर देवे।।20

कहा गया है कि यह शतवार अपने दोनों सीगों से राक्षस और जड़ से दुःख दायिनी पीड़ाओं को ढकेलता है। मध्य भाग से राज रोग

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

योग करें और सुरक्षित रहें

21 जून को प्रतिवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय योगदिवस के रूप में मनाया जाता है। विश्व के सभी देशों में लोग इस दिन योग और प्राणायाम करते हैं। स्वामी रामदेव जी कई वर्षों से योग साधना शिविरों के माध्यम से लोगों को योग के प्रति जागरूक कर रहे हैं। उन्हीं के पुरूषार्थ का परिणाम है कि आज योग को विश्व भर में एक नई पहचान मिली है। आज हर व्यक्ति योग, साधना के प्रति रूचि रखता है। 2014 में जब श्री नरेन्द्र मोदी जी भारत के प्रधानमन्त्री बनें तो उन्होंने 21 जून को विश्व के सभी देशों को एक दिन योग करने की प्रेरणा दी। विश्व के लगभग सभी देशों ने श्री नरेन्द्र मोदी के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। पहली बार यह दिवस 21 जून 2015 को मनाया गया था जिसकी पहल भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपने भाषण से की थी जिसमें उन्होंने कहा था कि- **योग भारत की प्राचीन परम्परा का एक अमूल्य उपहार है यह दिमाग और शरीर की एकता का प्रतीक है। मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य है तथा स्वास्थ्य और भलाई के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को भी प्रदान करने वाला है। यह व्यायाम के बारे में नहीं है, लेकिन अपने भीतर एकता की भावना, दुनिया और प्रकृति की खोज के विषय में है। हमारी बदलती जीवन शैली में यह चेतना बनकर, हमें जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद कर सकता है। तो आयें एक अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस को गोद लेने की दिशा में काम करते हैं।**

योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की एकाग्रता द्वारा आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास करना और आत्म साक्षात् द्वारा परम आत्मा तक पहुंचना है। योग का सीधा अर्थ है-जोड़ना। गीता के अनुसार कर्म कुशलता ही योग है। मनुष्य और ब्रह्माण्ड के एकात्म दर्शन का यह विज्ञान दर्शन भारत में उगा। आधुनिक रहन-सहन से तनाव और बीमारियां बढ़ रही हैं। योग तन-मन को स्वस्थ रखने की दिनचर्या का साधन है। योग विश्व को भारतीय ज्ञान साधना का अनूठा उपहार है।

हमारे शास्त्रों में योग को जहां आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति का उपाय बताया है वहां शारीरिक उन्नति का भी सर्वोत्तम तथा अचूक उपाय बताया गया है। योग दु:ख दूर करने का विज्ञान है। योग में दर्शन और विज्ञान साथ-साथ है। सम्पूर्ण भारत के लिए ये गौरव के पल हैं जब हमारी भारतीय संस्कृति और जीवनपद्धति को पूरे विश्व में मान्यता मिल रही है। शरीर को निरोग रखने के लिए यदि योग का सहारा लिया जा रहा है तो अच्छा ही है कि हम बिना किसी दवाई के फिट रहें। योग तो ऐसी चीज है कि बिना किसी खर्च के हम चुस्त दुरूस्त रह सकते हैं और करोड़ों अरबों रूपये जो दवा पर बर्बाद होते हैं उनका इस्तेमाल किसी और बेहतर काम में किया जा सकता है।

योग के अनुसार संकल्प, विकल्प, राग, द्वेष और अवसाद का केन्द्र मन है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने मन को शरीर का सूक्ष्म हिस्सा माना है। मन की क्षमता विराट है। इस योग साधना से ही मन को वश में किया जा सकता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। यहां कोई अन्धविश्वास नहीं है। ऋग्वेद से लेकर गीता और पतंजलि तक योग की वैज्ञानिक अविरल धारा है। स्वस्थ शरीर और एकाग्र मन की परिभाषा है। योग साधारण व्यायाम नहीं। योग सुसंबद्ध विज्ञान है। इसके चार चरण हैं-समाधि, साधना, विभूति और कैवल्य। आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। पतजंलि के ये सूत्र वैज्ञानिक हैं। योग के द्वारा व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का विकास होता है। योग के द्वारा जहां शरीर को निरोग और स्वस्थ बनाया जा सकता है वहीं मानसिक विकारों को भी शुद्ध किया जा सकता है। योग का विरोध करने वालों की मानसिकता में जो विकार आ गया है, उसे भी योग के द्वारा दूर किया जा सकता है।

जिस मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रोग नहीं सताते , जो विशेषकर यौवनावस्था में सब प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकारों से रहित है, जिसका बल, वीर्य, यश, पौरूष और पराक्रम सामर्थ्य तथा इच्छा के अनुरूप है, जिसका शरीर नाना प्रकार की विद्याओं, कला कौशल आदि विज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ है, जिसकी इन्द्रियां स्वस्थ, बलवान् और इन्द्रियजन्य भोगों को भोगने में समर्थ है, जिसके शरीर में किसी प्रकार की निर्बलता नहीं, उसका जीवन वास्तव में सुखी जीवन है। अत: जिसके शरीर में उपयुक्त गुण विद्यमान नहीं हैं, वह कभी सुखी जीवन नहीं कहला सकता। ऐसे नीरस तथा उत्साहहीन जीवन से न तो इहलोक ही सुधर सकता है और न ही परलोक। अत: इस लोक और परलोक को शांत तथा सुखमय बनाने का यदि कोई मुख्य साधन है तो वह है शारीरिक आरोग्यता। इसीलिए शरीर शास्त्र के आचार्यों ने कहा है-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष जो मानव जीवनरूपी कल्पवृक्ष के चार मधुर फल हैं, उनका यदि कोई श्रेष्ठ तथा मुख्य साधन है तो वह शारीरिक आरोग्यता ही है, क्योंकि यदि हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान है तो हम अपने पुरूषार्थ से धन भी कमा सकते हैं, उस धन द्वारा संसारिक सुखों का उपभोग भी कर सकते हैं और परोपकार देश, जाति तथा धर्म की सेवा तथा आत्मचिन्तन और प्रभुभक्ति आदि शुभ कार्य भी कर सकते हैं। इसीलिए महापुरूषों ने कहा है-

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।।

अर्थात् अपने जीवन को धार्मिक तथा सुखमय बनाने का सबसे प्रथम और मुख्य साधन स्वस्थ तथा बलवान् शरीर ही है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने शरीर स्वास्थ्य पर बहुत बल दिया है। महर्षि चरक तो यहाँ तक लिखते हैं कि- मनुष्य को अन्य सब काम छोड़कर पहले अपने शरीर की सम्भाल करनी चाहिए क्योंकि अन्य सब धन, सम्पत्ति आदि पदार्थों तथा सुख साधनों के होने पर भी शरीर स्वास्थ्य के बिना वह सब नहीं के समान हैं। इसलिए वेद में मनुष्य को आदेश दिया है कि-

स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज।

हे मनुष्य! तू अपने शरीररूपी क्षेत्र में रोग रहित होकर रह।

प्रतिवर्ष 21 जून को योग दिवस सम्पूर्ण विश्व में व्यापक स्तर पर मनाया जाता है। लाखों लोग एकत्रित होकर योग करते हैं। परन्तु इस वर्ष पूरे विश्व में कोरोना महामारी फैली हुई है। कोविड-19 के कारण इस वर्ष भीड़ को इकट्ठा नहीं किया जा सकता। इसलिए इस महामारी को हराने के लिए सभी लोग अपने-अपने घरों में सुरक्षित रह कर योग व प्राणायाम करें। योग व प्राणायाम के द्वारा कोरोना को मात दी जा सकती है। स्वामी रामदेव प्रतिदिन इंडिया टीवी और आस्था पर योग के लाभ बताते हैं। कोरोना में यह भी सामने आया है कि जिस व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रबल है वह इस बीमारी से बच सकता है। योग के द्वारा हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है। इसलिए आने वाले 21 जून को योग दिवस मनाएं। योग दिवस एक दिन नहीं मनाएं बल्कि प्रतिदिन योग को अपनी दिनचर्या का अंग बनाएं। तभी हम कोरोना जैसी वैश्विक महामारी को मात दे सकते हैं।

प्रेम भारद्वाज

संपादक एवं सभा महामन्त्री

उपनयन व वेदारम्भ संस्कार का संक्षिप्त परिचय

ले.-आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी ज्ञान विहार, निकट आर्यसमाज आत्मानन्द धाम, बिजनौर (उ.प्र.)

'उपनयन' शब्द उप उपसर्ग पूर्वक 'नी' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय के स्थान पर 'अन' आदेश होने से सिद्ध होता है। उप नाम समीप का है और नयन का अर्थ है प्राप्त होना। उपनयन के इस अर्थ के अनुसार विद्याऽध्ययन के लिये आचार्य के समीप होने को उपनयन कहते हैं। 'उपनयन' संस्कार में मुख्य कर्म यज्ञोपवीत का धारण करना है। बालक जब विद्या ग्रह करने का इच्छुक हो और पढ़ने में भी समर्थ हो जाये तब उसका यज्ञोपवीत संस्कार करा देना चाहिए। यह संस्कार बालक को द्विज बनाने के लिये किया जाता है। जिस मनुष्य को दूसरा जन्म प्राप्त हो जाये उसे द्विज कहते हैं। बालक पहला जन्म माता-पिता से प्राप्त करता है और दूसरा जन्म उसे आचार्य विद्या से प्राप्त कराता है। वैदिक संस्कृति में उपनयन संस्कार माता पिता के द्वारा मानो यह घोषणा होती है कि हमने बालक को भौतिक जीवन प्रदान कर उसे बाल्यकाल में जो शिक्षा व संस्कार हमारे द्वारा दिये जाने सम्भव थे, वे हमने दे दिये हैं परन्तु अब हम बालक को विशेषज्ञ आचार्यों के हाथों में देना चाहते हैं, जिससे कि यह विद्वान बनकर अपने ध्येय, धर्म, अर्थ व मोक्ष को प्राप्त कर सके। जिस सुन्दर काल में यह यज्ञोपवीत संस्कार सब स्थानों पर प्रचलित था, उस समय कोई भी मनुष्य अपठित नहीं रह जाता था। क्योंकि विद्याभ्यास करने के इस व्रतचिहन को धारण करने वाले सभी जन प्रभु के द्वार में किये गये अपने संकल्प के अनुसार बढ़ चढ़कर विद्याऽध्ययन किया करते थे। यज्ञोपवीत धारण करने से समाज को भी यह पता रहता था कि अमुक व्यक्ति विद्याऽअध्ययन में संलग्न है और जो यज्ञोपवीत धारण नहीं करता था उसे भी विद्या ग्रहण करने के संकल्पचिहन यज्ञोपवीत को धारण कराकर पढ़ने की प्रेरणा दी जाती थी।

विद्याऽअध्ययन के लिये विद्यार्थी को गुरु के निकट इतना आ जाना चाहिये कि वह गुरु के मन के अनुरुप एकमन वाला हो जाये। ऐसा करने पर वह गुरु के अन्तर्मन में बस जाता है। तब उस शिष्य को गुरु के अन्दर बसा हुआ होने के कारण अन्तेवासी कहते हैं। अन्तेवासी नाम विद्यार्थी के लिये अत्यन्त सार्थक नाम है। गुरु शिष्य को कितना अपने अन्तस्थ में ले आता है, इस भाव को दर्शाने के लिये अथर्ववेद का निम्नलिखित मन्त्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

अथर्ववेद 11/5/3

अर्थात् आचार्य उपनयन करता हुआ ब्रह्मचारी को अपने आचार्य कुल रूपी गर्भ में स्थित करता है। फिर वह आचार्य उसे नौ महीने के स्थान पर तीन रात्रि अर्थात् ज्ञान, कर्म उपासना विषयक तीन प्रकार की अन्धकारों की अवस्थाओं से होकर वसु, रुद्र क्रम से आदित्य ब्रह्मचारी के उदय होने तक अपने कुल में अन्तरतम में वास देता है। विद्या से द्विजरूपेण उत्पन्न हुए उस स्नातक को देखने के लिए देव आते हैं अर्थात् सब देवता उस ब्रह्मचारी में अनुकूल हो जाते हैं। अहो! वह आदित्य ब्रह्मचारी मानव जगत् की इतनी पूर्ण कृति होता है कि सब देवताओं का दर्शनीय हो जाता है। ऐसे दिव्य जन्म के अवसर पर समस्त देवजगत् प्रसन्न होकर उसका स्वागत करता है।

आचार्यों के द्वारा विद्या से ब्रह्मचारी को इस द्वितीय जन्म देने की प्रशंसा में आपस्तम्ब में लिखा है-

स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छेष्ठं जन्म।
शरीरमेव मातापितरौ जनयतः।

अर्थात् आचार्य ब्रह्मचारी को जो विद्या से जन्म देता है वही श्रेष्ठ जन्म है। माता पिता तो उसके शरीर को ही जन्म देते हैं।

यज्ञोपवीत यज्ञ अर्थात् देवपूजात्मक, दानात्मक व संगतिकरणात्मक श्रेष्ठतम कर्मों की ओर ले चलने का सूचक भी है। यज्ञोपवीत के द्वारा याजक को यज्ञ के व्रत से बांधा जाता है। इसीलिये अध्ययन व अग्निहोत्रादि कर्मों के लिये यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। इस विषय में ऐतरेयारण्यक में लिखा है-

यज्ञोपवीती एव अधीयीत यजेत याजयेत वा यज्ञस्य प्रसृत्यै।

अर्थात् यज्ञ की प्रसृति अर्थात् फैलाव के लिये जिसने यज्ञोपवीत धारण किया है वही अध्ययन व यज्ञ करने कराने का अधिकारी है। यज्ञोपवीत का मन्त्र भी आचार्य के मुख से स्वयं कह रहा है-

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेन उपनह्यामि।

अर्थात् यह यज्ञोपवीत यज्ञ का है, इस यज्ञोपवीत के द्वारा तुझे यज्ञ के लिये बांधता हूँ। आरम्भ से लेकर दयानन्द पर्यन्त सभी ऋषि मुनियों का यद्यपि यही उपदेश है कि यज्ञोपवीती ही यज्ञ करे, किन्तु वर्तमान समय में वेदों की प्रवृत्ति कम होने से नाना प्रकार के अधर्मयुक्त सम्प्रदाय जगत् में चल पड़े हैं। तब इस स्थिति में यज्ञोपवीतहीन लोगों को यज्ञ से वंचित कर देने से उनके वैदिक संस्कृति से दूर हो जाने का भय बना रहता है। इस भय के निराकरण के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती के वचनों में उन अभागों के लिए उदारता के दर्शन होते हैं जिससे कि वे अबोध लोग कहीं वैदिक धर्म से छिटक ही न जायें। महर्षि दयानन्द सरस्वती संस्कार विधि में लिखते हैं-

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्यभाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो, तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्यकर्ता जड़, मन्दमति, काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो, तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो, तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करें और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावें। पूज्य महर्षि जी अपने इस विधान में मन्त्रोच्चारण की शिक्षा प्राप्त करना सबके लिये आवश्यक कर्तव्य बता रहे हैं। अहो! इस विधान से प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य का बोध होकर उसे अपना वेदाऽध्ययन करने का पवित्र अधिकार पाप्त हो रहा है तथा इसी के साथ उस यजमान को जो कि मन्त्रोच्चारण की शिक्षा प्राप्त करने में प्रभाव कर रहा है उसे अग्रगति देने के लिये मूढ़ कहकर झिंझोड़ भी रहे हैं कि तू आखिर कब तक मन्त्रोच्चारण की शिक्षा प्राप्त नहीं करेगा। ऐ मानव! इसके बिना तेरा उद्धार नहीं है। तथापि जो अग्रगति न करे उस यजमान को दयालु दयानन्द वैदिक धर्म के आवश्यक कर्त्तव्य यज्ञ से पृथक् भी नहीं कर रहे हैं और आशान्वित हैं कि यदि यह यज्ञशाला से जुड़ा रहा तो एक दिन मन्त्रोच्चारण के सामर्थ्य आदि विशेषताओं को भी धारण कर ही लेगा। इस विधान के अनुसार पुरोहितों का कर्तव्य बनता है कि यजमानों को यज्ञोपवीत धारण करने की प्रेरणा करे, किन्तु जो यज्ञ करने के पश्चात् यज्ञोपवीत को उतार दे उसे तब तक यज्ञोपवीत प्रदान न करे कि जब तक वह व्रती होकर आजीवन के लिये यज्ञोपवीत ग्रहण न करे। देखना एक दिन आयेगा कि यह तब ज्ञानपूर्वक यज्ञोपवीत भी ग्रहण करेगा, इसे भी अपने सन्निकट रखने की आवश्यकता है। वेद में कहा है-''पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्'' इस चयन का भी यही अभिप्राय है।

यज्ञोपवीत में तीन सूत्र होते हैं जो ऋषिऋण, पितृऋण व देवऋण की स्मृति कराते हुए उन ऋणों से मुक्त होने के लिये स्वीकार किये गये संकल्प के सूचक हैं। पहले ऋषिऋण के प्रसंग में 'ऋषि' किसे कहते हैं इसका विचार करते हैं। निरुक्तकार यास्काचार्य जी ने ऋषित्व क्या है, इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है :-

''ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यवः''।

अर्थात् जिसे दर्शन होता है, जिसने मन्त्रों को देखा है वा मन्त्रार्थ का दर्शन किया है वह ऋषि है। यहाँ पर दर्शन का अर्थ बाह्य चर्मचक्षु आदि इन्द्रियों से होने वाला दर्शन नहीं है अपितु इससे भिन्न ही प्रज्ञा प्रज्ञा में प्रकट हुआ आन्तरिक ज्ञान है। इस बात को पुष्ट करने के लिये यास्क मुनि ने तैत्तिरीय आरण्यक का निम्नलिखित वचन भी वहाँ उद्धृत किया है:-

(क्रमशः)

आर्य समाज के द्वितीय नियम की वेदमूलकता

ले.-वीरेन्द्र कुमार अलंकार अध्यक्ष, दयानन्द चेयर फॉर वैदिक स्टडीज् एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

(गतांक से आगे)

वेद के इन वचनों पर भी ध्यान दीजिए-

क. स दाधार पृथिवी द्याम् (यजुर्वेद)

ख. यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः (ऋग्वेद-8.12.30)-सूर्यादि लोकों को रच कर हे ईश्वर, तुमने ही धारण किया है।

ग. व्यस्तभ्नात् रोदसी... विश्वश्वतत्त वृष्णम् (ऋग्वेद 6.7.3)-हे ईश्वर, द्युलोक व पृथिवी लोक को आपने ही स्तम्भित किया है और... इस प्रकार सारे विश्व जगत् को तुम ही धारण करते हो। यह बात ध्यान देने की है कि जब से सृष्टि बनी है, तब से अगणित ग्रह घूम रहे हैं वह भी व्यवस्था से। कभी नहीं सुना कि चांद, सूर्य या पृथिवी में कभी टक्कर हुई हो। जिनका आधार होता है, उसमें व्यवस्था होती है। प्राणियों को खाद्य, पेय, कर्मफलव्यवस्था आदि सब आधार ईश्वर ने ही दिए हैं। ब्रह्माण्ड की सारी व्यवस्था ईश्वर के सामर्थ्य से ही हो रही है। बिना आधार के किसी भी व्यवस्था का चलना सम्भव नहीं है। ईश्वरीय आधार सर्वथा निर्दुष्ट है। इसलिए वह सर्वाधार है। सामवेद (1243) में ईश्वर को धर्ता कहा गया है-दिवो धर्त्ताऽसि, तू द्युलोक को धारण करता है, त्वं हि श्श्वतीनामिन्द्र धर्त्ता पुरामसि (सामवेद 1247) हे परमेश्वर, तू प्रवाहरूप से अनादि लोकलोकान्तरों को धारण कर रहा है। इन्द्रो विश्वस्य कर्मणों धर्त्ता (सामवेद-1250)-ईश्वर सब के कर्म का धारण करने वाला है।

11. सर्वेश्वर विशेषण की वेदमूलकता

विश्व का आधार होने के साथ ही ईश्वर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अधिपति भी है। इसलिए उसे सर्वेश्वर कहा गया है। जिसके अधीन व्यवस्था होती है, वही उसका अधिष्ठाता या ईश्वर (स्वामी) होता है। इसलिए वेद कहता है-यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् (ऋग्वेद-10.127.8)। ईश्वर ही सर्वेश्वर है-यहां ईश्वर शब्द को यौगिक समझना चाहिए। प्रथम ईश्वर शब्द पारिभाषिक होने से विशेष अर्थ परमात्मा का बोधक है और सर्वेश्वर में ईश्वर का अर्थ अधिष्ठाता, अधिपति, ऐश्वर्यवान् और समर्थ है। सर्वेश्वर का अर्थ यह नहीं है कि जो कुछ दुनियां में होता है, वह ईश्वर की इच्छा से होता है। क्या बलात्कार, डकैती, हत्या, अपहरण, बम विस्फोट, महामारी-ये सब ईश्वर चाहता है? नहीं। ईश्वर तो अपने आधिपत्य से जीव को आगे बढ़ने के सब अवसर प्रदान करता है। अवसर का उपयोग वा दुरुपयोग करना जीव के आधीन है। ईश्वर सारे विश्व का शासक है, वह दोपाए, चौपाए अर्थात् मनुष्य व पशुओं का कल्याण करता है-इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे (यजुर्वेद-36.7)। उपनिषद् कहती है कि यह ईश्वर सर्वेश्वर व सर्वज्ञ है-सर्वेश्वर एष सर्वज्ञः (माण्डूक्यो-पनिषद्-7)। आर्य समाज के इस नियम में इसीलिए ईश्वर को सर्वेश्वर कहा गया है।

सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम समुल्लास) में ईश्वर का एक नाम विश्वेश्वर भी पठित है। इसका अर्थ है-यो विश्वमिष्टे स विश्वेश्वरः, जो जगत् का अधिष्ठाता है, इससे उस परमेश्वर का नाम विश्वेश्वर है। इसी के आधार पर यह निरुक्ति की जा सकती है-यः सर्वे चराचरं जगद् ईष्टे स सर्वेश्वरः, जो सारे चराचर जगत् का अधिष्ठाता है, इससे वह सर्वेश्वर है।।

12. सर्वव्यापक विशेषण की वेदमूलकता

ईश्वर अणु से भी अणु और महान् से भी महान् है-अणोरणीयान् महतो महीयान (श्वेताश्वतरोपनिषद्-3.20)। ईश्वर की सर्वव्यापकता का प्रसिद्ध प्रमाण यह है कि-स ओतश्च विभूः प्रजासु (यजुर्वेद-15.27) वह विभु-व्यापक व प्रजाओं में ओत-प्रोत है। सामवेद में ईश्वर को वात कहा गया है। वात का अर्थ है-व्यापक-वात आवातु भेषजम्। हे (वात) व्यापक परमेश्वर, (भेषजम् आवातु) हमें ओषधी प्रदान कीजिए। इसी प्रकार उत वात पितासि न भ्रातोत नः सखा स नो जीवातवे कृधि। हे (वात) सर्वव्यापक परमेश्वर है, तू हमारा पिता, भ्राता तथा सखा है। तू हमें दीर्घ जीवन दे। वेद कितनी स्पष्टता से कहता है कि परमात्मा सर्वत्र व्यापक है-स पर्यागात् (यजुर्वेद 40.7)। सम्पूर्ण जगत् ईश्वर से आच्छादित है-ईशावास्यमिंद सर्व यत्किंच जगत्यां जगत् (यजुर्वेद 40.1)। वेद में ईश्वर को आपः भी कहा गया है। स्वामी जी ने आपः का यौगिकार्थ किया है-सर्वव्यापक।

वेद में अनेक प्रमाण हैं, जहाँ ईश्वर को सर्वव्यापक कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी पदार्थ ईश्वर में नहीं, बल्कि ईश्वर प्रत्येक पदार्थ में व्यापक है। ईश्वर जीव से सूक्ष्म है। कोई भी पदार्थ अपने से सूक्ष्म पदार्थ में प्रविष्ट नहीं हो सकता, हाँ, स्थूल में रह सकता है। ईश्वर तो प्रविष्ट ही नहीं, व्यापक भी है। जैसे लोहा स्थूल है और अग्नि सूक्ष्म। इसलिए अग्नि लोहे में प्रविष्ट कर व्याप्त रूप में रह सकती है। बिजली के तार स्थूल हैं, उनमें बिजली सूक्ष्म और निराकार होने से व्याप्त हो सकती है। इसी प्रकार ईश्वर के सूक्ष्मतम किं वा निराकार होने से उसकी व्यापकता में कोई दोष वा आपत्ति नहीं है। व्यापक होने के कारण ईश्वर को विष्णु भी कहा गया है।

13. सर्वान्तर्यामी विशेषण की वेदमूलकता

तार में निराकार बिजली व्याप्त है, किन्तु वह अन्तर्यामी नहीं है। जड़ पदार्थ अन्तर्यामी नहीं हो सकता। परमेश्वर सर्वव्यापक होने के साथ साथ सर्वान्तर्यामी भी है। अन्तर्यामी का अर्थ है-अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽन्तर्यामी। जो सब प्राणी और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम अन्तर्यामी है। वेद कहता है-अग्ने त्वयं नोऽअन्तमः (यजुर्वेद 3.25)-हे अग्निस्वरूप ईश्वर। तुम ही हमारे अन्तम अन्तर्यामी अर्थात् जीवन के हेतु हो। ईश्वर पूरे ब्रह्माण्ड में व्यापक होते हुए भी जीव और प्रकृति से पृथक है। परमेश्वर जीव में स्थित भी है और मित्र भी। उपनिषद् कहती है कि इस बात को मूढ़ जीवात्मा समझता नहीं है। यह परमेश्वर जीव में व्यापक व भिन्न रह कर जीव के पाप-पुण्यों का साक्षी होकर उनके फल जीवों को देकर नियम में रखता है, इसलिए वह अन्तर्यामी है-य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरीयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्। आत्मनोऽन्तरो-ऽयमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः (शतपथब्रह्माण-14.5.5.30)।

परमेश्वर अन्तर्यामी होने के कारण जीवात्मा के प्रत्येक कर्म का साक्षी है। इसीलिए वह कर्मों के फलों को यथावत् देता है-यद् ब्रह्म सर्वस्य प्रकृत्यादेर्बाह्या-भ्यन्तरावयवानभिव्याप्य सर्वेषां जीवानामन्तर्यामिरूपतया सर्वाणि पापपुण्यात्मकर्माणि विजानन् याथातथ्यं फलं प्रयच्छत्येतदेव सर्वैर्ध्येयमस्मादेव सर्वैर्भेतव्यमिति।

इस प्रकार सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी वे दोनों शब्द कुछ विशिष्ट अर्थ को कहते हैं। उपनिषद् ने ईश्वर को साक्षात् रूप से सर्वव्यापी और अन्तरात्मा (अन्तर्यामी) भी कहा है-यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद् (श्वेताश्वतरोपनिषद्-3.7), अङ्ष्ठुमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा (श्वेताश्वतरोपनिषद्-3.13), अन्तर्याम्येषः (माण्डूक्योपनिषद्-6)। अतः दोनों पर्यायवाची नहीं हैं।

14. अजर व अमर विशेषण की वेदमूलकता

अजर का अर्थ है कभी भी जीर्ण न होना और अमर का अर्थ है प्राणवियोग न होना। पाणिनि ने मृड्, धातु को प्राणवियोग अर्थ में माना है अर्थात् प्राणवान् का ही प्राणवियोग सम्भव है। ईश्वर प्राणवान् न होने से स्वतः अमर सिद्ध है। जीर्णता और मृतता कालावच्छिन्न में ही सम्भव है। पतंजली ने ईश्वर को काल से अनवच्छिन्न माना है-पूर्वोषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् (योगसूत्र 1.26)। ईश्वर की अजरता व अमरता में कुछ प्रमाण दिए जा रहे हैं-

-वेदा ह्येतमजरं पुराणम् (श्वेताश्वातरोपनिषद्-3.21)

(क्रमशः)

आर्य मान्यताओं के पुनः संस्थापक-महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

ले.-कृष्ण चन्द्र गर्ग 831, सैक्टर 10 पंचकूला (हरियाणा)

(गतांक से आगे)

एक दिन पण्ड्या मोहन लाल ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि भारत का पूर्ण हित और जातिय उन्नति कब होगी। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना ऐसा होना मुश्किल है।

वेदों के सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं ''मैं वेदों में कोई बात युक्ति विरुद्ध वा दोष की नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत है।'' महर्षि का यह मत सभी ऋषि-मुनियों के मत के अनुकूल ही है। वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद लिखते हैं-बुद्धिपूर्वा वाक्य-कृतिर्वेदे। अर्थात् वेद का प्रत्येक वाक्य समझदारी से बना है। महर्षि मनु कहते हैं-यस्तर्केणानुसन्धते तं धर्म वेद नेतरः। अर्थात् जो युक्ति से सिद्ध हो वही वेद का धर्म है, और कोई नहीं।

महर्षि दयानन्द वेदों को ईश्वर कृत तथा सब सत्य विद्याओं का पुस्तक मानते थे। वे वेद पढ़ने का अधिकार स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबका मानते थे और वे मानते थे कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

महर्षि दयानन्द का स्वाध्याय बहुत विस्तृत था। ''भ्रान्ति निवारण'' पुस्तक में पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न को उत्तर देते हुए वे लिखते हैं-''मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ।

अंग्रेजी राज्य के सम्बन्ध में-23 नवम्बर 1880 को थियोसौफिकल सोसायटी की मैडम ब्लेवास्तिकी को लिखे पत्र में स्वामी दयानन्द भगवान् को धन्यवाद करते हैं कि अंग्रेजी राज्य में मुसलमानों के अत्याचार से कुछ-कुछ छुटकारा मिला है।''मैं तथा अन्य सज्जन लोग पुस्तकें लिखने, उपदेश देने तथा धर्म के विषय में स्वतन्त्र हैं। इसका कारण इंग्लैण्ड की महारानी, पारलियामैंट तथा भारत में राज्याधिकारी धार्मिक, विद्वान् और सुशील हैं। अगर ऐसा न होता तो स्वतन्त्रता से व्याख्यान देना, वेदमत प्रचारक पुस्तकें लिखना सम्भव न होता और आज तक मेरा शरीर भी बचना कठिन था। इसलिए इन सभी महानुभावों को हम धन्यवाद देते हैं।''

सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल एम.ए. के विचार-''इस महान् ग्रन्थ के अध्ययन से मेरी विचारधारा बदल गई है। सोई हुई जाति के स्वाभिमान को जागृत करने वाला यह ग्रन्थ अद्वितीय है।''

वीर सावरकर की सत्यार्थ प्रकाश पर टिप्पणी-''हिन्दू जाति की ठण्डी रगों में गर्म खून का संचार करने वाला यह ग्रन्थ अमर रहे। सत्यार्थ प्रकाश की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।

प्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी ने कहा था-हमारा सबसे अधिक उपकार महर्षि दयानन्द ने किया है।

महान् कहानीकार उपन्यास सम्राट् मुन्शी प्रेमचन्द की एक कहानी है ''आपका मित्र।' कहानी के नायक ने अपने कमरे में स्वामी दयानन्द का एक चित्र लटका रखा है। वह बता रहा है कि यह चित्र उसने क्यों लटका रखा है। ''मैं उसे केवल इस कारण से अपने कमरे में लटकाए हुए हूँ कि स्वामी जी के जीवन का उच्च और पवित्र आचरण सदा मेरी आँखों के सामने रहे। जिस घड़ी सांसारिक लोगों के व्यवहार से मेरा मन ऊब जाए, जिस समय प्रलोभनों के कारण पग डगमगाएं अथवा प्रतिशोध की भावना मेरे मन में लहरें लेने लगे अथवा जीवन की कठिन राहें मेरे साहस व शौर्य की अग्नि को मन्द करने लगे, उस विकट बेला में उस पवित्र मोहिनी मूर्ति के दर्शनों से आकुल-व्याकुल हृदय को शान्ति हो, दृढ़ता और धीरज बने रहें, क्षमा व सहनशीलता के मार्ग पर पग चलते चलें तथा मैं अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि इस चित्र से मुझे लाभ पहुँचा है और एक बार नहीं, कई बार।

किस प्रभु की उपासना करें हम

डा. अशोक, गाजियाबाद उ.प्र. भारत

प्रभु हमारे गन्तव्य है, प्रभु की प्राप्ति ही हमारा अन्तिम लक्ष्य है। इस गन्तव्य को, इस लक्ष्य को हम अपना ज्ञान बढ़ाकर तथा प्रजा का पालन करने से ही प्राप्त किया जा सकता है। मानवीय वीरता किस बात में है? यह अन्यों के दुःख दूर करने में है, उन्हें सुखी करने में है। मानव मात्र को अग्नि की भान्ति बन कर स्वयं भी आगे बढ़ना चाहिये तथा दूसरों को भी, उन के पथ प्रदर्शक बनकर, मार्गदर्शक बनाकर उन्हें भी आगे बढ़ाना चाहिए। यह सब तब ही सम्भव है, जब मानव त्याग की भावना से कार्य करता है। इस तथ्य को सामवेद के मन्त्र संख्या २६ में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है:-

नित्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम।

सुदीरमग्न आहुत।।साम. २६।।

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य परमपिता परमात्मा की प्राप्ति है। परमपिता परमात्मा को पाने के लिये हमें अपने में ही परमपिता परमात्मा के समान गुणों को पैदा करना होता है यथा सर्वकल्याण की भावना, दूसरों का सहयोग, मार्गदर्शन करना आदि। इस लक्ष्य को ही सम्मुख रख हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! हम आपका ध्यान करते हुये आपको धारण करते हैं। आप ही हमारे गन्तव्य हो, हमारे अन्तिम लक्ष्य हो। जिस प्रकार अपने लक्ष्य को पाने के लिये प्राणी हजारों यत्न करता है, उस प्रकार ही हम भी आप तक पहुंचने के लिये निरन्तर यत्न करते रहते हैं। परमात्मा ही हमारा अन्तिम लक्ष्य है। उसकी प्राप्ति के मार्ग पर चलने से मानव को सन्तोष नहीं मिलता। मानव शक्तियों को जीर्ण करने का कमज़ोर करने का कारण भी अपार सम्पति तथा त्याग योग्य अनेक प्रकार के भोग्य पदार्थ होते हैं। इस ओर जाने से मानव का कल्याण सम्भव नहीं।

जब प्रकृति में स्वयं में ही आनन्द नहीं तो वह दूसरों को आनन्दित कैसे कर सकती है? अर्थात् प्रकृति से कोई भी आनन्दित नहीं हो सकता। जब मानव आनन्द प्राप्त करना चाहता है तथा प्रकृति आनन्द दे नहीं सकती फिर एकमात्र प्रभु ही आनन्द का स्रोत है, तब ही हम प्रभु की ओर जाते हैं तथा उसे ही अपना लक्ष्य, उसे ही अपना अन्तिम गन्तव्य बनाते हैं। वह प्रभु सब प्रजाओं का पालक है, पितृवत सब का पालन करता है। इस चल संसार में भी जो व्यक्ति पालन का कार्य करता है, उसे सब दुःखी लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। जब बिना किसी स्वार्थ के वह दुःखियों की सहायता करता है तो दुःखी लोग तो उससे प्राप्त दया के लिये उसके उपासक बनते ही हैं, अन्य लोग भी उसे सम्मान देने लगते हैं।

परमपिता परमात्मा को पालक कहा गया है। पिता पालक क्यों है? कैसे है? परमपिता परमात्मा ज्योतिर्मय है, सब को ज्योति देने वाला है, ज्ञान बांटने वाला है, प्रकाश फैलाने वाला है। इस कारण उसे पालक कहा गया है क्योंकि वह ज्ञान का प्रकाश देकर हमारा पालन करता है। इस प्रकार ही जो प्राणी ज्ञान के मार्ग पर सेवा के मार्ग पर, दान के मार्ग पर जितना ही अग्रसर होगा, उतना ही वह स्वार्थ से दूर होता चला जावेगा। जब स्वार्थ से दूर होगा तो परार्थ के कार्य करेगा, परोपकार करेगा, दूसरों की सहायता करते हुए प्रभु के ही कार्य करेगा।

परमात्मा सुवीर है

परमपिता परमात्मा हमें शोभन गति को प्राप्त कराने वाला होने के कारण उत्तम वीर भी है। उत्तम वीर किसे कहते हैं? जो सदा दूसरे का हित देखे, दूसरे का हित चाहे, दूसरे के हित की बात करे, उसे उत्तमवीर कहा जाता है। परम पिता परमात्मा सदा दूसरों का, प्राणी मात्र का हितचिन्तक होने के कारण उत्तम वीर कहा जाता है। ऊपर कहा गया है कि परमात्मा के गुणों को अपनाना ही जीव को उत्तम बनाता है। अतः दूसरों की सहायता करना, दूसरों का मार्गदर्शन आदि करना भी मानव को उस पिता की ओर ले जाता है। औरों का हित करने से परमपिता परमात्मा सुवीर है तो हम भी उसका अनुकरण करते हुये सुवीर बनने का यत्न करें। परमात्मा सब को आगे की ओर ले जाता है।

परमपिता परमात्मा सब प्राणियों को सदा आगे की ओर ले कर चलता है। सब की उन्नति चाहता है। सबकी प्रगति चाहता है। सबका कल्याण चाहता है। इसलिये वह परमात्मा आहुत कहलाता है। उस परमात्मा ने हमारे चारों ओर उत्तम पदार्थों को हमारे उपभोग के लिये निर्माण कर रखा है। इतना ही नहीं हमारे उत्कर्ष के लिये, हमारे उत्थान के लिये जितने भी आवश्यक पदार्थ होते हैं, उन सब को हमारे लिये जुटा कर दिया है। यदि हमारे में ज्ञान है तो हम इन पदार्थों का उपयोग करते हैं, यदि हमारे में ज्ञान का अभाव है, जिस कारण हम इन पदार्थों का सदुपयोग नहीं कर पाते, यह एक भिन्न बात है। परमपिता ने तो हमारे लिये सब साधन बना दिये। अब हमारे अन्दर इतनी बुद्धि होनी चाहिये कि हम इन पदार्थों को अपने जीवन को सुखी बनाने के लिये कैसे प्रयोग करें। यदि हमारे पास ऐसा ज्ञान ही नहीं है कि हम इन वस्तुओं के प्रयोग को समझ कर इन्हें उपयोग में ला ही न सकें तो इस में परमात्मा का क्या दोष है? हम अपने ज्ञान को बढ़ायें तथा इन सब साधनों का सदुपयोग करें।

वास्तव में जो व्यक्ति प्रभु का ध्यान करता है, प्रभु के बताये मार्ग पर चलता है, उस के आदेश में रहता है वह कभी भी अपने आप को भोगवाद के मोह में नहीं जाने देता, कभी भोगवाद का शिकार नहीं होता। उस प्रभु की छाया में रहने वाला व्यक्ति सदा अपने को काबू में रखता है, अपने आप पर अंकुश लगाये रखता है। इस प्रकार वह अपने आप को साधारण नहीं विशिष्ट व्यक्तित्व का धनी बनाता है तथा संसार ऐसे व्यक्ति का आदर करता है, मान देता है, उसकी यश व कीर्ति को दूर दूर तक ले जाता है।

पृष्ठ 2 का शेष-वैदिक चिकित्सा विज्ञान

को हटाता है इसको कोई भी अनहित नहीं दबा सकता है।।21

औषध देने से पूर्व वैद्य रोग के लक्षण देखकर निदान करते हैं। आवश्यक होने पर दो-तीन वैद्य मिलकर निदान करते हैं। वेद में कहा गया है कि हे मनुष्य लोगों। जो सर्वोत्तम सोमलता के साथ वर्तमान औषधि है उसके विज्ञान के लिए आप लोग आपस में संवाद करो। हे वैद्य और राजपुरूष। हम लोग वेदों और उपवेदों का वेतापुरूष जिस रोगी के लिए इन औषधियों का ग्रहण करता है उस रोगी को रोग सागर से उन औषधियों से पार पहुंचाते हैं।।22

ओषधि के प्रभाव से रोग कैसे भाग जाता है इस पर कहा गया है- हे मनुष्यों। तुम लोग जो सब ओर से स्थित सब सोमलता और जो आदि औषधि जैसे गौशाला की दीवार तोड़ कर चोर भाग जावे वैसे पृथ्वी को छोड़कर निकलती है। जो कुछ शरीर का पापों के फल के समान रोग रूप दु:ख है उन सब को नष्ट करती है। उन ओषधियों का युक्ति से सेवन करो।।23

4. शल्य चिकित्सा-वेदों में शल्य चिकित्सा पर भी पर्याप्त विवरण उपलब्ध है। यहां हम उनमें से कुछ अंश पाठकों के लिए दे रहे हैं। हे मनुष्य जो कुछ तेरा टूटा हुआ अंग और तेरा जलता हुआ और जो शरीर में पिसा हुआ है, मैं पोषण करने वाला वैद्य कल्याण करने वाली क्रिया से उस जोड़ को दूसरे जोड़ से फिर जोड़ दूंगा।।24

हे विद्वान। मेरे हाड़ की मींग हाड़ की मींग से मिल जावे और तेरा जोड़ जोड़ से मिल जावे। तेरे मांस का हटा हुआ अंश जुड़ जावे और हाड़ भी जुड़कर ठीक हो जावे।।25

वेद में घाव को भरने के लिए पिप्पली ओषधि का भी वर्णन हुआ है। धातु की जाँघ बनाकर लगाने का वर्णन भी ऋग्वेद में प्राप्त है। युद्ध में या खेल के कारण अथवा बीमारी में चलने का साधन ही निश्चय से टूट गया है। हे चिकित्सकों तत्काल भागने या भगाने के लिए युद्ध अथवा धन के लिए हित साधन के कार्य में चलने के लिए लोहे की बनी जड़घा फिर से लगा दें, पक्षी के पक्ष की तरह।।26

इसी तरह टूटी हुई हड्डी को जोड़ने के लिए भी कहा गया है कि जो वैद्य टकराने से टूटी हुई ग्रीक आदि जोड़ों की हड्डियों को यथा स्थान चिपका कर जोड़ता है वही टेढे और अकड़े हुए अंग को भी ठीक कर देता है।।27

चोट लगने पर सर्वप्रथम रक्त के बहाव को रोक देना चाहिए। वे जो सेवा करने वाली रक्त से ढकी हुई नाड़िया चलती है वे बिना भाईयों की बहनों के समान निस्तेज होकर ठहर जावे। इसका अर्थ यह है कि जब किसी रोग के कारण वैद्य नाड़ी छेदन करे और रूधिर निकलने से रोग बढ़ाने में नाड़िया ऐसी हो जाये जैसे माता-पिता और भाईयों के बिना कन्याएं असहाय हो जाती है तब नाड़ियों से रूधिर बहने से रोक दें।।28

वेद में चीर फाड़, पोल्टिस और बाण की नोक से मवाद निकालने का भी वर्णन है। कहा गया है कि बाण की नोक से, लेव से और पंख वाले तीर के भाग से विष को निकाल कर मैंने वचन कहा है।।29

शल्य चिकित्सा में वेद में पर्याप्त विवरण उपलब्ध है परन्तु यहां एक छोटे से लेख में और अधिक लिखना उचित नहीं है।

5. विष चिकित्सा-अथर्ववेद तथा ऋग्वेद में विष चिकित्सा पर भी पर्याप्त विवरण उपलब्ध है। अर्थवेद में कहा गया है, हे विष। शीघ्रगामी सुन्दर पंख वाले गरूड़ ने प्रसिद्ध तुमको खाया। तूने न तो उसे मत्त किया और न उसे घबरा दिया किन्तु तू उसके लिए अन्न हुआ है।।30

जल सेवन और सत्तुओं के सेवन से विषैले रोगों का नाश होता है।

हे शरीर के दु:ख दायक विष। तिरस्कार के साथ तेरे लिए तेरे को हटाने के लिए, रोग जीतने में समर्थ, मुटाई अथवा चर्बी रोग पचाने वाले और जाहर अग्नि बढ़ाने वाले जल सेचन को बनाकर भूख के कारण जिसने खा लिया उसको उस तू ने मूर्छित किया है।3।

कुछ चिड़िया है जो विष को चूस कर हटा देती है। वेद में कहा गया है-हे विष के भय से डरने वाले जन। जो इतने विशेष देश में हुई कपिञ्जली पक्षी है। वह तेरे विष को खा लेती है। वह भी शीघ्र नहीं मरती और हम लोग भी नहीं मारे जावे। इस पक्षी के योग से विष का प्रभाव दूर जो जाता है।32

जो इक्कीस प्रकार की छोटी छोटी चिड़िया है वे विष के पुष्ट होने योग्य पुष्प को खाती है। वह भी शीघ्र नहीं मरती है और हम लोग भी नहीं मारे जावे और इस संयोग से विष का प्रभाव दूर हो जाता है। हे विष धारी। विष हरण करने में से स्थिर विष हरने वाले वैद्य तू ने मधुरता को प्राप्त किया है। इसकी मधुरता ग्रहण कराने और विष हरने वाली विद्या है।।33

कुछ रत्नों के द्वारा भी विष हर लिया जाता है। वेद में कहा गया है, जो मैला कुचैला, छोटा सा नकुल विषयुक्त उस दुष्ट को विष हरने वाले पत्थर से मैं अलग करता हूं। इस कारण उस विषय को छोड़ विभाग वाली जो दूर प्राप्त होती उन दिशाओं को पीछालखि प्रकट होता है उनसे भी निकल जाता है।।34

यदि विषैला पक्षी, पशु, सर्प, कीट आदि काट लेवे तो मनुष्य थोड़े विषैले के काटे को आग से सेंक दें और बड़े विषैले के काटें को आग से जलाने तथा विद्वान वैद्यों से ओषद लेवें।।35

आर्यों का जीवन अत्यन्त सादा और प्रकृति के अनुकूल होता था। वे अपना अधिकांश प्रकृति के मध्य ही व्यतीत करते थे इसलिए सामान्य रूप से वे स्वस्थ रहते थे और कभी रोग के वश में आ जाते थे तो प्राकृतिक चिकित्सा उन्हें प्रिय थी। प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है सूर्य का ताप, वायु की स्वच्छता शुद्ध जल का प्रयोग तथा शुद्ध शाकाहारी स्वास्थ्य प्रद भोजन तथा नियमित दिनचर्या का पालन।

अब हम इन बिन्दुओं पर भी विचार संक्षेप में विचार करेंगे।

सूर्य चिकित्सा-सूर्य की किरणे रोगाणुओं को नष्ट कर दिया करती है। वेद में कहा गया है कि जो सूर्य प्रकाशमान और व्याप्ति वाले धारण और आकर्षण गुणों को पुष्टि के लिए अपने अधिकार में रखता है वह द्यू और पृथ्वी लोग के द्वारा हनु वाला होकर कृमि आदि का नाश करता है।।36

इसी प्रकार वायु के विषय में वर्णन है कि वायु ओषधि है जो हमारे हृदय के लिए कल्याण कारक है। आनन्द दायक है और हमारी आयु को बढ़ाने वाला है।।37

वायु हमारा पालक और बन्धु के समान मित्रवत् कल्याणकारी है। वह हमें जीवन हेतु करता है अर्थात् उसके अभाव में हम जीवित नहीं रहते।।38

हे वायु स्वास्थ्य को बहाकर ला और हे वायु जो दोष है उसे बहाकर निकाल दे क्योंकि हे सर्व रोगनाशक वायु। तू इन्द्रियों, विद्वानों और सूर्यादि लोकों के मध्य चलने वाला अथवा दूत बनकर फिरता रहता है।।39 इसी प्रकार जल चिकित्सा के विषय में कहा गया है।

हे मनुष्य (उन मंगलकारी जलों को नीरोगता करने वाले जलों को और उन भय जीतने वाले जलों को सब ओर से उस परमेश्वर ने दिया है जिससे निश्चय करके तेरे लिए सुख बढ़े।।40

जल निश्चय ही भेषज रूप हैं। जल रोग को दूर करने वाला है। जल सब प्राणियों की भेषजभूत है अत: वे तुझ रोगी को स्वस्थ करे।।41

फिर भोजन के विषय में कहा गया है कि मैं अन्न खाऊं। हम मनुष्य जाति अन्न खावें मांस न खावें। अन्न कैसा हो? स्वादिष्ट हो, सत्कार के योग्य हो अर्थात् जिसको देखकर चित्त प्रसन्न हो जावे। उस अन्न को समस्त श्रेष्ठ और सामान्य मनुष्य मधुर कहते हुए खावे। ऐसे अन्न को खाने वाले सुमति और बुद्धिमान होवे साथ ही सुकर्मा, स्वाध्याय शील, उद्योगी और कर्मपरायण होवें।।42

हम जो भी अन्न खावें उसे हजम अवश्य करें। वेद का कथन है कि जो कुछ मैं खाता हूं, उसे बल बना देता हूं तब मैं वज्र को ग्रहण करता हूं। उस शत्रु के कन्धों को तोड़ता हुआ जैसे बुद्धि का स्वामी शत्रु हो।।43

इसके अतिरिक्त स्त्री रोगों और उनके उपचार के विषय में ऋग्वेद और अर्थवेद में 50 से भी अधिक मन्त्र आये हैं परन्तु स्थानाभाव से उस पर चर्चा करना छोड़ देते हैं परन्तु यह बताना आवश्यक समझता हूं कि आयुर्वेद के विद्वान वैद्य नपुंसक व्यक्ति को उसके रोग से मुक्त करना जानते थे और इसी तरह बांझ स्त्री को भी गर्भाधान धारण करा देते थे। इस विषय में वेद के शब्दों में ही चर्चा करते हैं। हे ओषधि। तू सब ओषधियों में अति श्रेष्ठ और बड़ी प्रसिद्ध है मेरे लिए अब इस नपुंसक पुरूष को सब प्रकार उपयोगी बना दे।।44

हे रोगी। मैं जो तेरी दो नाड़ियां मद से पीड़ित है और जिन दोनों में ढीलापन स्थित है, तेरे लिए उन दोनों को उस स्वस्थ नाड़ी से अलग दोनों अण्डकोषों में शान्तिकारक सभ्या शस्त्र से अधिकार पूर्वक मैं छेदता हूं।।45 इसी प्रकार स्त्री में जो बांझपन है उसे भी मिटाया जा सकता है।

वेद में कहा गया है कि हे स्त्री। जिस कारण से तू बांझ है उस कारण को मैं नष्ट कर देता हूं। अभी इसको तुझसे दूर हटाकर कहीं दूर रख देता हूं।।46

और जैसे मंगल दायक बालकों को ओषधि के रस उत्पन्न करते हैं वैसे ही सन्तानों के साथ तू कुलशोभक बालक को प्राप्त कर। सो तू जनने वाली, दूध पिलाने वाली माता न।।47

(गतांक से आगे) आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के साहित्य विभाग अधिष्ठाता एवं आर्य समाज नवांशहर के वरिष्ठ सदस्य श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी अपने परिवार सहित यज्ञ करते हुये। चित्र दो में आर्य समाज घिलौडी गेट पटियाला के प्रधान एवं अन्तरंग सभा के सदस्य श्री वीरेन्द्र कौशिक जी अपने परिवार सहित यज्ञ करते हुये। आर्य समाज फाजिल्का के प्रधान श्री सुशील वर्मा जी सपरिवार यज्ञ करते हुये।

आर्य समाज नंगलटाउनशिप के संरक्षक श्री आसकरण सरदाना जी सपरिवार यज्ञ करते हुये। आर्य समाज फरीदकोट के प्रधान श्री सतीश कुमार शर्मा परिवार सहित यज्ञ करते हुये। सभा के अन्तरंग सदस्य श्री विपिन धवन जी फिरोजपुर हवन करते हुये।

आर्य समाज लुधियाना पश्चिम लुधियाना की प्रधाना श्रीमती सतीशा शर्मा जी अपने परिवार के साथ हवन करते हुये। चित्र दो में आर्य समाज औहरी चौक बटाला के प्रधान श्री परविन्द्र चौधरी जी सपरिवार हवन करते हुये जबकि तीन में श्री सुरेन्द्र गर्ग जी बठिंडा सपरिवार हवन करते हुये।

श्री अरुण सूद जी लुधियाना सपरिवार हवन करते हुये। चित्र दो में आर्य समाज मोगा के प्रधान श्री नरेन्द्र सूद जी परिवार सहित हवन करते हुये। चित्र तीन में श्री रणवीर शर्मा जी लुधियाना सपरिवार हवन करते हुये।

श्री योगेश सूद जी मोरिण्डा सपरिवार हवन करते हुये। चित्र दो में आर्य समाज बरनाला के प्रधान श्री सूर्यकान्त शोरी परिवार सहित हवन करते हुये। चित्र तीन में आर्य समाज चौक पटियाला के प्रधान श्री राज कुमार सिंगला सपरिवार हवन करते हुये।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रेस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org